कहानी कह रहा हूँ

ज़िंदगी के अनकहे किस्सों का सफ़र

अविनाश त्रिपाठी (हिन्दवी)

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Avinash Tripathi (Hindavi) 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7310-401-0

Cover Design: Shivam Gaur
Typesetting: Sagar

First Edition: January 2026

भूमिका

कोई भी पुस्तक लिखने के दो माध्यम होते हैं, एक तर्कपूर्ण लेखन जिसका उद्गम मस्तिष्क होता है, दूसरा भावपूर्ण लेखन जिसका उद्गम हृदय होता है। जब कुछ लिखा जाता है तो वहां बुद्धि का हस्तक्षेप अवश्यंभावी है लेकिन जब लिखना स्वतः ही होने लगे तो वहां हृदय की प्रधानता होती है और जहां हृदय की प्रधानता होती है वहां भाव महत्वपूर्ण हो जाता है, शेष सब गौण। इस स्थिति को छायावाद के प्रमुख रचनाकार सुमित्रानंदन पंत ने बखूबी व्यक्त किया है।

वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान।
निकलकर आंखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।।

कोई भी काव्य सहज ही मन के अनंत परतों को तोड़ बाहर नहीं आ जाता है। जब हृदय के हर तंतु से भावों का सैलाब उमड़ता है, काव्य बाहर आता है और वह लिखा नहीं जाता है बल्कि लिख जाता है।

इस सृष्टि में जो कुछ भी है, चाहे वह प्राकृतिक हो या मानव जनित हो वो सबकुछ रचना का विषय है, जैसे विश्वविद्यालय की सड़क पर भटकती हुई एक पागल, भावुक हृदय के लिए काव्य का श्रोत है।

विश्वविद्यालय की सड़क पर
देखा मैंने एक पगली
काले फटे चिथड़ों में लिपटी
अर्धनग्न फिर भी सिमटी।।

इसी तरह एक बेटी की उदासी हो या सीमा पर खड़ा जवान हो जो युद्ध के लिए हमेशा तत्पर रहता है, कुर्सी के लिए मचा रेलमपेल हो या बूढ़े माँ-बाप के अकेलेपन की व्यथा हो, शहर की खटर-पटर भरी मशीनी जिंदगी हो या गांवों की सुकून भरी शाम हो,अपनी असफलता की कहानी हो या मुट्ठी से फिसलती रेत सी दुनिया हो, ये सारे विषय एक भावुक हृदय के लिए काव्य के श्रोत हैं।

एक साधारण इंसान जब किसी विषय विशेष की गहराइयों मे उतरता है तो वह उसकी विवेचना करता है, उसकी इस विवेचना का परिणाम क्या होगा, यह उस व्यक्ति के मनःस्थिति पर निर्भर होता है। मनःस्थिति के उद्दीपन में विचारों की बड़ी भूमिका होती है, यद्यपि विचार का उत्पन्न होना बौद्धिक प्रक्रिया है किंतु जब तक विचार बुद्धि को आत्मसात किए रहती है, तब तक विचार का मूल रूप बना रहता है लेकिन जब वही विचार मन या हृदय को आत्मसात कर लेता है और हृदय के रोमकूपों में बस जाता है तो वह भाव बन जाता है । यह वही भाव है जो मनःस्थिति का वातावरण तैयार करता है। विचारों की एक बड़ी खासियत होती है कि एक बार पैदा हो जाने के बाद वो खत्म नहीं होते हैं, मस्तिष्क के किसी अवचेतन कोने में जाकर छुप जाते हैं और धीरे धीरे एक गुबार की तरह पलते रहते हैं । यही विचार जब पूर्णतया संतृप्त होकर शब्दों में व्यक्त होने लगते हैं तो कुछ रचा जाता है। मैंने जिन कविताओं को लिखा उन सभी को जब आप ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे तो पाएंगे कि मैंने विचारों द्वारा मन को आत्मसात करने तक प्रतीक्षा की है।

भूकंप का आना एक भूगर्भिक प्रक्रिया है, अब यदि कोई विचार किसी भूकंप मे प्रकृति का प्रतिशोध देखता है, तो यहां विचार और मन का एकत्व हो गया है और दोनों का आपसी विलय ही उस मनःस्थिति को जन्म दे रहा है जिसमें मानव द्वारा प्रकृति के प्रति दुर्व्यवहार का भाव समाहित है । इसी तरह यदि कोई हरश्रृंगार के सौंदर्य से मोहित है तो यह भी उसके मनःस्थिति का ही परिणाम है। सावन के बूंदों से सावन के झूलों तक जो इठलाता है वह मन ही है, पहाड़ों

की सुंदर वादियों मे भटकता, पहाड़ की पीड़ा को महसूस करने की कोशिश करने वाला भी मन ही है। काव्य के जितने भी रस और अलंकार हैं वो सभी लिखने वाले के मन और मनःस्थिति के रस और अलंकार के प्रतिबिंब हैं।

मेरी यह रचना जीवन के विभिन्न पड़ावों पर हुए अनेक प्रकार के अनुभवों से संकलित है। इसमें आत्मकेंद्रित अनुभवों के साथ-साथ सामाजिक, राजनैतिक, प्राकृतिक अनुभवों का भी समावेश है।

मुझे भाषा के रूप में हिंदी का जो थोड़ा बहुत ज्ञान है, वह मुझे मेरे पिता श्री नंदकिशोर त्रिपाठी से मिला और हृदय की भावुकता मुझे मेरी माँ से मिली। इन दोनों के बिना किसी भी प्रकार की कोई रचना संभव नहीं है इसलिए यह पुस्तक मैं उन्हीं को समर्पित करता हूं।

मैं बड़े भाई और भाभी का हृदय से आभार व्यक्त करता हूं जिनकी छत्रछाया में मैं सदैव महफूज रहा। मेरी दोनों बहनों ने हमेशा मुझे लिखने के लिए प्रोत्साहित किया और प्रिय मित्र आकाश नेगी ने हमेशा मुझमें सकारात्मक ऊर्जा का संचार किया, मैं इन सबका हृदय से आभारी हूं। विशेष आभारी हूं अपनी अर्द्धांगिनी का जिनकी सहजता और समर्पण ने मेरा जीवन आसान बनाया। उनके बिना कुछ भी संभव नहीं।

निष्कर्षतः अब ये पुस्तक आप के हाथ में हैं। मेरे भावनाओं की माला कैसी बनी है, यह आपका विषय है।

आभार

अविनाश त्रिपाठी (हिंदवी)

mybookway@gmail.com

प्रिय पुत्र अमिय के लिए ...

अनुक्रमणिका

पापमुक्त हो जाता हूं 1
बेटी ! 3
मैं इश्क नहीं लिखता 5
मैं प्रकृति हूं 7
क्या कहूं ? 10
नव ज्योति जलाएं 12
कहानी कह रहा हूं 13
चलो आज कुछ ऐसा करें 21
कुर्सी मायावी है 23
मेरे महज स्वीकार से 25
मैंने देखा 27
अंधेरे का गवाह 30
यह विजय दिवस है 32
फिर अंधकार कैसा ? 36
आवारा जिंदगी 38
हवा आज कुछ ऐसी चली 40
ठिठुरा हुआ कंकाल 42
सोचता हूं गर कहीं मैं 45
हे गीत मेरे तुम मत रुठो 47
पगली 49
कुम्भ 51

शिकार हो गए 53
मसला 56
दरख्त दरक गए तो क्या 58
सूखे सागर की रेती से 60
मैं कौन हूं 61
गर्दिश गुजर जाएगी.. 63
यह मौसमी फरेब 64
नया रिवाज 66
एक युद्ध छिड़ा है भारत में.. 68
लोकशाही 71
रेत सी 73
जब से तू आई है 75
वह जिंदा है.. 76
रक्तिम क्षितिज 77
कंकरीट के शहर में 78
वो पहाड़.. 80
तुम आ जाओ 82
मेरा गांव 85
हरश्रृंगार 90

पापमुक्त हो जाता हूं

प्रिये,
कर आलिंगन तेरा
मैं पापमुक्त हो जाता हूं ।।
जब मेरा शापित मन
जब मेरा तापित तन
कर्मों के इस अग्नि वायु से
जल कर राख हुआ जाता है
तेरे निश्च्छल प्रेम प्रपात में
डूब प्रिये,
मैं कितना निर्मल हो जाता हूं ।।
कर आलिंगन तेरा
मैं पापमुक्त हो जाता हूं ।।
प्रिये,
यह जग सारा,
यह भौतिक दुनिया का आकर्षण
यह पाने खोने का घर्षण
यह निरीह एकांत शिशिर का
यह कोलाहल
जगत शिविर का
यह चौराहे पग पग पर
यह आशा
और निराशा का तम

हैं यह सब केवल भ्रम ।।
एक सत्य है विकल हृदय का
एक सत्य है महा विलय का
एक सत्य का बोध प्रिये
कि मोक्ष तुम्हीं से पाता हूं ।।
कर आलिंगन तेरा
मैं पापमुक्त हो जाता हूं ।।
धर्म-अधर्म की परिभाषा
मैं कैसे तय कर सकता हूं
इस समाज के चक्रव्यूह को
तोड़ निकल कैसे सकता हूं ।।
मर्यादाओं का खड़ा जयद्रथ
क्या मेरा वध करवाएगा ?
लिये भावनाओं के शस्त्र
निर्मम नियमों से लड़ता हूं,
वध होता हूं और
न जाने नित दिन
कितने वध मैं करता हूं ।।
एक लक्ष्य है, एक स्वप्न है
तोड़ आठवां द्वार तुम्हें पाना है
इस हेतु प्रिये मैं प्रतिपल
कटता हूं कटता जाता हूं ।।
प्रिये,
कर आलिंगन तेरा
मैं पापमुक्त हो जाता हूं ।।

बेटी !

बेटी,
तुम क्यों उदास हो ?
तुम कलश जल,
तुम सप्त जन्म सत्कर्म फल
तुम पिता की शान हो
तुम धरा का आदि अन्त ।।
तुम सृजन, साहस, दमन,
तुम स्वरा हो और श्री भी
तुम हो निष्ठा और नियति भी
तुम ही कुल हो और वंशज
तुम ही कनिष्ठा और अग्रज
फिर तुम क्यों उदास हो ?
तुम रूकी तो
रूक गयी है गति धरा की
तुम झुकी तो
झुक गयी वीणा स्वरा की
तुम जो सिसकी तो
सिसकते हैं गणों के देवता
तुम जो हँस दो तो
नियति भी मुस्कुरा पड़ती यहां
फिर तुम क्यों उदास हो ?
ये न समझो कि पुरूष ही

एक मात्र बल बीज है,
ये न समझो कि पुरूष ही
इस धरा का नीड़ है,
ये न समझो कि
ये कोमलता तुम्हारी
पैरों में पड़ी जंजीर है ॥
तुम शिवी हो ये तो मानों
तुम सुरा हो, तुम ही अपरा
तुम पुरूष की पूर्णी हो
तुम सृष्टि हो, तुम वृष्टि हो
तुम सोच कर देखो जरा
फिर क्यों उदास हो ?
जिस दिन समझ में आ गया
तुम को तुम्हारा बल प्रबल,
जिस दिन समझ में आ गया
तुमको तुम्हारा ध्येय तल,
जिस दिन तुम्हारे मन ने तुमको
दे दिया साहस अनन्त,
देखना फिर तुम उसी दिन
तुम ही ब्रह्मा, तुम ही विष्णु
और महेश बन जाओगी,
जो भी ठानोगी हृदय में
तुम सहज कर पाओगी
तुम मत उदास हो ॥

मैं इश्क नहीं लिखता

मैं इश्क नहीं लिखता
मैं रश्क नहीं लिखता
मैं नहीं लिखता
कयामत की कहानी
मैं नहीं काबिल कि
लिखूं वीरगाथा
या कि वाणी ।।
मैं नहीं लिखता
समंदर खार कितना हो चला
मैं नहीं लिखता कि
वेधक पार कितना हो चला
हिम नदी पिघली है कितनी,
यह नहीं मेरा विषय है
मैं नहीं लिखता कि
कैसा ये सृजन है
क्या प्रलय है ।।
मैं महज अपना विषय हूं
स्वयं में ही राग हूं, अनुराग हूं,
द्वेष का गह्वर भी मैं
और वेधक पार हूं
स्वयं ही खारा समुद्र
और हिमनद स्वयं हूं ।।

खुद में सृजन,
खुद में प्रलय
और खुद संहार हूं,
मैं ही गाथा वीरता की
मैं ही वाणी सार हूं ।।
गर मनुज हूं तो ये सच है
मैं धरा हूं, मैं गगन हूं
मैं ही दरिया, मैं समंदर
भाव सारे जी रहा हूं
शब्द सारे पी रहा हूं ।।
मैं वही लिखता
जो मैं हूं मनुज के रूप में
मैं वो शीतल छांव हूँ
बैठा हुआ जो धूप में ।।

मैं प्रकृति हूं

मैं प्रकृति हूं
मैं धर्म हूं, मैं कर्म हूं,
कर्ता भी मैं, परिणाम भी,
सृष्टा भी मैं, संहार भी ।।

मैं प्रकृति हूं
सृष्टि है काया मेरी
और ऋतुएं श्वास हैं
ये हिमालय वक्ष मेरा
और सागर नेत्र हैं
ये मरू, और
मैदानों की हरियाली
इस धरा के गर्भ तत्व सब
रक्त मज्जा हैं मेरी ।।

मैं प्रकृति हूं
मेरी कृतियों में मनुज है
कृत्य सर्वोत्तम मेरी
ये धरोहर है मेरी ब्रह्मांड में
चेतन स्वरूप,
इस कड़ी के ही चतुर्दिक

स्नेह मेरा वृत्ति रूप ।।
मैंने रचे इसके लिए
भोग के साधन अनेक,
वायु दी, भोजन दिया
और नदजल भी दिया
नभ दिया, बादल दिया
और भूतल भी दिया ।।

मैं प्रकृति हूं
बस एक गलती हो गई
मुझसे मनुज निर्माण में,
मैंने दे दी शक्ति इसको
मेरे ही संधान में ।।
इसने तोड़े हर नियम
जो नियत थे चक्र हेतु
निज स्वार्थ हेतु इसने रचे
मुझ पर अनेकों वक्र सेतु ।।
इसने बिगाड़ा है संतुलन
मेरी हर कृति का निरंतर
मैं विवश हूं, फिर करूं मैं
संतुलित निज चक्र तदंतर ।।

मैं प्रकृति हूं
लो कर दिया शुरुआत मैंने
मेरी कृतियों का ही शोधन,

यह प्रलय की भांति होगा
इससे महा संहार होगा
इससे मनुज तापांत होगा
तदंतर
मेरी कृतियों का विकल पथ
नव सृजन से शांत होगा ।।

क्या कहूं ?

क्या कहूं ?
कुछ शेष है क्या ?
जो कभी मैं था नहीं
वह मुझे बनना पड़ा
चेतना जो थी अटल
कई बार उससे लड़ना पड़ा
छद्म की दीवार पर
जो पड़ी थी स्नेह चादर
सत्य के प्रकोष्ठ में जा
तार-तार करना पड़ा ॥
क्या कहूं ?
कुछ शेष है क्या ?
ये छायादार वृक्षों का
है जो घना जंगल यहां
यह छद्म है
खोखले हैं वृक्ष सब
सब पत्तियां सूखी हुई
और इनके विशाल जड़, तन
हैं खोखले इतने कि
आग सी किरणें
बरसती हैं जमीं पर ॥
इन जंगलों का

और इन दरख्तों का
हर रूप,
काया और ये छाया
सब छद्म है ॥
क्या कहूं ?
कुछ शेष है क्या ?

नव ज्योति जलाएं

नव ज्योति जलाएं
तम के भीतर तम के
मन के भीतर भीषण तम के
अंदर तम के बाहर तम के
तामस भ्रम के आमस सम के
सारे भ्रम मिटा डाले
नव ज्योति जलाएं ।।
चलो दीप महोत्सव करें
ज्योति तरंगों के अश्वों को
तामस दिक् की ओर जोत दें
शिव के धनु को
मानस मनु को
परशु कुल्हाड़ी और वज्र को
पिघलाये और दीप बनाएं ।।
पुर्खों के सपनो को
मुनियो के तप फल को
कर्मों के पारस बल को
सेवा और समर्पित तन को
आओ घृत बाति बनाएं ।।
आओ क्रान्ति अनल से
दीप जलाएं
हाँ... नव दीप जलाएं ।।

कहानी कह रहा हूं

कहानी कह रहा हूं
सुनो बर्बाद होने की,
जवानी के हसीं लम्हो के
बस यूं खाक होने की ।।
न आया काम खुद के
न आया काम
जमीं में रंग भरने के
न हसरत भर मोहब्बत के
न हसरत भर हिकारत के
न हसरत भर गुलामी के
न हसरत भर अदावत के
रहे ज़ख्मों से रिसते पस
कयामत आज होने की ।।
कहानी कह रहा हूं
सुनो बर्बाद होने की,
जवानी के हसीं लम्हो के
बस यूं खाक होने की ।।
कभी नन्हा सा बच्चा था
मोहब्बत यूं उमड़ती थी
कभी बालिग हुआ तो
हसरतें थी तूफानी सी
मेरी आँखों में सपने थे

मेरे होठों पे खामोशी
मेरी बाहों में ताकत थी
मेरे रिश्तों में सरगर्मी
रहे आकाश के पंछी
न सरहद थी उड़ानों की ।।
कटे जब पंख मेरे तो
हुआ एहसास कुछ ऐसा
न जख्मों पर कोई मरहम
क्या हालत आज कहने की ।।
कहानी कह रहा हूं
सुनो बर्बाद होने की,
जवानी के हसीं लम्हो के
बस यूं खाक होने की ।।
जवानी के तपिश में
जल गया सब
मैं जला, राहें जलीं,
दर जले, दरख्त भी
ख्वाब के पैमाने जले
और हकीकत सख्त भी
जल गये सरगर्म रिश्ते
जल गये सब तख्त भी
जो खुले थे वो जले
जल गये सब जब्त भी ।।
जब तपिश ठंडी पड़ी
तब राख चारों ओर थी

जिंदगी इस बेबसी को
देखती होकर सिफर
क्या रही ताकत, जवानी,
क्या रहे वह रहगुजर ॥
कहानी कह रहा हूं
सुनो बर्बाद होने की,
जवानी के हसीं लम्हो के
बस यूं खाक होने की ॥
चला मदमस्त तो
चलता गया,
न आगे की तरफ देखा
न पीछे का कभी सोचा
न पाने पर कभी ठिठका
न खोने पर कभी रोया
न जन्नत की कभी ठानी
न दोजख में कभी खोया
न जाम - ए - इश्क को दौड़ा
न तन्हा हो कभी रोया
न महफिल से कभी भागा
न गर्दिश में कभी सोया ॥
इन बाहों की वो ताकत थी
जवानी भर तुम्हें ढोया
जब बाहें हो गईं बेदम
तो बाजू आजमाने की ॥
कहानी कह रहा हूं

सुनो बर्बाद होने की,
जवानी के हसीं लम्हो के
बस यूं खाक होने की ।।
मेरे जज्बात् की छोड़ो
खिलौना सा बना रखा
जो आया मन तो
आसमां पर उठा रखा
जो आया मन में तो
जमीनो खाक कर रखा
मेरे होठों के लफ्जों को
मिजाजे चाह पर रखा,
मेरी सांसो
मेरी धड़कन औ'
मेरे कश्मकश को भी
जमाने ने सियासत के
साजो सामान सा रखा ।।
मेरे पैबोश, मेरे नौरोज़,
मेरी सआदत* को
गलत समझा
मेरे कुर्बान दिल
औ' मेरे अशआर*
गलत समझा
मेरे आगोश में आये हुए
हर शै को गलत समझा
मेरे आंखों में सिमटे हुए

हर कल को गलत समझा
मेरी आंखो से टपके हुए
हर कतरे को गलत समझा ।।
मेरे रूह से मेरी बातों को
मेरे निर्दोष रातों को
मेरे जज़्बात की दुनिया के
हर जर्रे को गलत समझा ।।
मै खामोश हूं,
मेरी खामोशी को गलत समझा
मै मदहोश हूं,
मेरी मदहोशी को गलत समझा
मेरे कातिल को गलत समझा
मेरे मुंसिफ को गलत समझा,
अब नहीं जज़्बात के हैं
रहगुजर हम भी
अब अगर संगदिल बना
संगेअसवद* को
गलत समझा ।।
कहानी कह रहा हूं
सुनो बर्बाद होने की,
जवानी के हसीं लम्हो के
बस यूं खाक होने की ।।
मैं जीता हूं
मेरी किस्मत के
बेपर्द गुनाहों को

मैं जीता हूं
मेरे रिसते हुए
अनजान घावों को ।।
मेरा हर रोज
रातों सा गुजरता है
कहीं सिमटा हुआ
मेरी राहें हैं पथरीली
मेरा जीवन मुसाफिर सा ।।
कहानी कह रहा हूं
सुनो बर्बाद होने की,
जवानी के हसीं लम्हो के
बस यूं खाक होने की ।।
जिया जाता हूं बस यूं ही
कहीं कोई मुकाम नहीं मिलता
है कीचड़ हर तरफ देखो
कहीं कोई कमल नहीं खिलता
मेरी चादर है छोटी
मगर ये पांव लम्बे हो गये
बहुत चाहा कि धागे बुन लूं
मगर ये दांव लम्बे हो गए ।।
सफर लम्बा हुआ जाता है
गर्दिश नहीं छंटती
ये दुनिया है फरेबों की
यहां मेरी नहीं बनती
यहां जज्बात,

कौड़ियों के भाव बिकते हैं
मेरी तो हर सांस है जज्बाती
मेरी कीमत नहीं लगती ।।
कहानी कह रहा हूं
सुनो बर्बाद होने की,
जवानी के हसीं लम्हो के
बस यूं खाक होने की ।।
जमाने भर तलाशा
हो कोई पारखी दिल का
जहां नोटों पे छपते दिल
वहां तूली नहीं होती
जहां शब्दों पर हो पाबंदी
वहां झोली नहीं भरती ।।
है कौन और जाने कहां
जो मानता ईमान को
कोई छाती किए चौड़ी
है तौलता इंसान को
कोई मजहब सिखाता है
कोई खैरात सिखलाता यहां
कोई माथे पे लिखता है
कि किस कुल में हुआ पैदा ।।
कोई मंदिर सिखाता है
कोई मस्जिद सिखलाता यहां
मैं इंसान की औलाद हूं
कोई नहीं बतलाता यहां ।।

कहानी कह रहा हूं
सुनो बर्बाद होने की,
जवानी के हसीं लम्हों के
बस यूं खाक होने की ॥

**(सआदत -नेकी)*

**(अशआर-कविता)*

**(संगेअसवद-काबे में रखा पवित्र काला पत्थर)*

चलो आज कुछ ऐसा करें

चलो आज कुछ ऐसा करें
जीवन की जड़ता को
मेहनत की खंजर से
काट डालें ॥
रोती हुई आँखों को
खुशियों का समंदर
बांट डालें ॥
चलो आज कुछ ऐसा करें
ठंडी पड़ी ऊर्जा पर
सीलन लगी मधुता पर
सूरज की किरणों की
आंच डालें ॥
खाली पड़े हाथों को
बिगड़ी हुई बातों को
सगुण के सांचे में
ढाल डालें ॥
चलो आज कुछ ऐसा करें
भटकी हुई चेतना को
मुर्दा पड़ी विवेचना को
मांझ डालें ॥
भाग्य की विडम्बना को
एकता विखंडना को

राजकीय प्रगल्भना को
सत्य की कटार से
परम्परा के वार से
धर्म के व्यवहार से
मार्ग के प्रसार से
प्रेम के प्रवाह से
युग के आचार से
कर्म की कुठार से
काट डालें ।।
चलो आज कुछ ऐसा करें ।।

कुर्सी मायावी है

कुर्सी मायावी है
चेतन की परिधि में
कुर्सी सम्प्रभु है
कुर्सी जिसके चार पैर हैं
खड़ी है,
गौरव या कि घमंड से
निहारती मानवीय
उच्छृंखल चेतना को,
उसी के नीचे पायदान
कुछ दमित भावों सहित
किन्तु महसूस करता गौरवान्वित सा ।।
कुर्सी के चार पांव जमे हैं
मजबूती से,
लोकतंत्र के धरातल पर
अपने सहगामी
पायदान के साथ,
समय भी विवेकहीन सा देखता
कुर्सी के खेल को
कुर्सी तक जाने की
रेलम पेल को ।।
कुर्सी मायावी है
संतो से लेकर

सत्ता के भोगी तक
सब माया में
जिजीविषा का खेल
आज सल्तनतों की भांति
खेला जा रहा है
कुर्सी की छाया में ॥

मेरे महज स्वीकार से

मेरे महज स्वीकार से
क्या बदल सकती है सूरत ?
या मेरे इन्कार से कुछ वेदनाएं
छोड़ जख्मों को उसी हालत में
कुछ समय के ही लिए
निकल सकती हैं क्या ?
एक द्वंद जो चलता है
हृदय तल में कहीं
यह द्वंद
घना होता ही दिखता है
करणीय और कुकृत्य
दोनों पक्ष में
कुकृत्य का जो पक्ष है
वह है बली,
हैं हजारों रक्त बीज
ध्वज के तले
चतुरंगिनी उसकी
सजी रणभूमि में
एक अकेले सत्य के
वध के लिए ।।
ये हृदय मेरा जो
अब रणभूमि है

रक्तरंजित हो रहा इस द्वंद से
करणीय और कुकृत्य सब
समय की धार पर निर्भर रहे
करणीय था जो कल
अब वही कुकृत्य है
वह कुकृत्य ही
करणीय कल को हो रहा
सदकृत्य का हनु
जो प्रबल था कल वहां
आज वह बलहीन
देखो सो रहा ॥

मैंने देखा

मैंने देखा,
सीमा पर खड़े एक जवान को
उसके कंधे पर लदा बारूद
सीने में जल रही
प्रतिशोध की आग
उत्तप्त मानस, ज्वलंत आंखे
विशाल भुजदंड, दृढ़ आक्रोश
करता आदेश की प्रतीक्षा
लिए प्रचंड प्रलय
की प्रबल इच्छा ।।
मैंने देखा,
बर्फानी हवाओं में
बर्फ होती पहाड़ी चोटियों को
फेफड़े में जब्त होती
सांस की सरगर्मियों को,
ऐसे में खड़ा उग्र चंचल जवान
मृत्यु का करता वरण
मां को फिर रक्तिम
तिलक लगाने को,
करता आदेश की प्रतीक्षा
लिए प्रचंड प्रलय

की प्रबल इच्छा ।।
मैंने देखा,
शांतिवादी राष्ट्र का
ढिंढोरा पीटते खद्दर को
सहानुभूति की बौछारों से
गर्वित होते,
किंतु वह जवान
जिसमें मरने की प्रबल इच्छा
उसे नहीं चाहिए
सहानुभूति की भिक्षा,
वह योद्धा है और युद्धभूमि में
करता आदेश की प्रतीक्षा
लिए प्रचंड प्रलय की
प्रबल इच्छा ।।
मैंने देखा,
आदेश के गूंजते
गम्भीर स्वर को
फिर गोलियों की तड़-तड़ाहट
चीखों का कलरव
कुछ विद्रूप सा
चेहरा बनाए वह जवान
मौत के समकक्ष जाता हुआ ।।
हां...फतह के ओज से

दमका हुआ चेहरा
पुनः करता आदेश की प्रतीक्षा,
लिए प्रचंड प्रलय की
प्रबल इच्छा ॥

अंधेरे का गवाह

पेड़ की डाल पर बैठा उल्लू
अंधेरे का गवाह है ।।
अंधेरा जिसमें छुप जाती हैं
रात की करतूतें,
अंधेरा जिसमें
खो जाती है पहचान,
अंधेरा जिसमें
उठ खड़ा होता है
सभ्यता का
अंतःस्थलीय शैतान ।।
पेड़ की डाल पर बैठा उल्लू
अंधेरे का गवाह है ।।
वह जानता है,
दिन में दक दक चमकते
खद्दर के काले धब्बों को
वह जानता है
कानून की सरपट
सपाट सड़क पर
उभर आए भयंकर गढ्ढों को ।।
वह जानता है
मानवता सो जाती है

रात को गहरी नींद में
और किल्विष
खोखला करता है
उजाले की नींव को ।।
पेड़ की डाल पर बैठा उल्लू
अंधेरे का गवाह है ।।
आंख पर पट्टी बांधे
न्याय की देवी
सो गई है गहरी नींद में,
जैसे चिर सुप्त गांधारी
वह जानता है,
गांधारी की पट्टी खुलेगी और
दुर्योधन वज्र देह धारण करेगा
वह जानता है,
दुर्योधन के वज्र प्रहार से
भीम उसी पेड़ के नीचे मरेगा ।।
पेड़ की डाल पर बैठा उल्लू
अंधेरे का गवाह है ।।

यह विजय दिवस है

यह विजय दिवस है
सहस्र दीप जल रहे
क्या अंतर्मन से ?
तम दूर भागता दिखता है
रोम रोम आह्लादित है
क्या अंतर्मन से ?
यह कहता उससे छीनो
वह कहता है चोर कहीं का
कहीं कहीं तो नर संहार
कहीं कहीं नर ही आहार
कहीं कहीं सब मिल बोले
वह कुख्यात वह तालिबान
वह कुख्यात वह पाकिस्तान
कहीं कहीं
बस राम राज है, गांधी हैं
और कहीं पर
पूंजीवाद की आंधी है,
यह विजय दिवस है
सहस्र दीप जल रहे
क्या अंतर्मन से ?
मटमैले कपड़ों में लिपटे
और पसीने की बूंदो से

अपने खेतों को सींचे
नव रत्नों की उम्मीद छोड़
पाई-पाई जोड़-तोड़
और महाजन से ले उधार
वह दीप जलाता
विजय दिवस पर,
क्या अंतर्मन से ?
यह विजय दिवस है
सहस्र दीप जल रहे
क्या अंतर्मन से ?
सुबह-सुबह उठ
घुरहू चिल्लाया
देखो देखो राहुल आया
गांव-गांव घर घर जाकर
सपनों के नवरंग सजाकर
मैले गुदड़ी बिछी खाट पर
या प्राइमरी की टाट पर
बैठ कहानी गढ़ता
और आशा दीप जलाता,
क्या अंतर्मन से ?
सहस्र दीप जल रहे
क्या अंतर्मन से ?
देखो वह भी दीप जलाता है
कुलीनतंत्र को,
खामखाह लोकतंत्र बतलाता है

यह बैठा यह खाता है
वह बैठा पी जाता है
अपना वंश दीप जलाकर
औरों की चिता जलाता है
शब्दों मे देखें तो
नेता, प्रणेता और
अभिनेता कहलाता है,
यह विजय दिवस है
सहस्र दीप जल रहे
क्या अंतर्मन से ?
माओ का बड़ा बुलंद नारा है
चीन से नेपाल
नेपाल से भारत
भारत से श्रीलंका
और म्यांमार तक
कहीं माओवाद है
कहीं नक्सलवाद है
स्वतंत्र देश का नागरिक
वाकई आजाद है ?
हां यह रेड कॉरीडोर है
सम्प्रभु की हिली हुई पोर है
अखण्ड के खण्ड पर
भयावह जोर है
यहां बड़ा कलरव
वहां बड़ा शोर है

न आज की शाम है
न कल का भोर है
जी रहा है भाग्यवश
हर आदमी,
यह विजय दिवस है
सहस्र दीप जल रहे
क्या अंतर्मन से !!

फिर अंधकार कैसा ?

एक दीया जला
फिर जल गए घने तम के जंगल
एक पर्व हुआ एक धर्म हुआ
जल पड़े कोटि सम धर्म दीप
नव निर्मित, संचित,
संचेत, सुभग,
नव युग, नव जुगत, नव नेतृत्व,
नव तप, नव युवा,
नव नीति सजग,
नव शक्ति, नव भक्ति,
नव तृप्ति प्रबल
ये सब इस युग के हैं
नव दीप प्रज्वलित,
फिर अंधकार कैसा ?
जब हृदय बाहु में
आ सिमट गया हो
नव युग का यह पर्व विलक्षण।।
सदियों के बाद हुआ ऐसा
जैसे प्रगति का बोध हुआ हो
सदियों के बाद हुआ ऐसा
जैसे धरणी का शोध हुआ हो
सदियों के बाद हुआ ऐसा
जैसे युवा मन जाग उठा हो

सदियों के बाद हुआ ऐसा
जैसे भारत का भाग्य उठा हो ।।
जब नव युग के निर्माता ने
कर दिया निर्माण शुरू
फिर अंधकार कैसा ?

आवारा जिंदगी

आवारा जिंदगी
आवारा जिंदगी
भटके-भटके पल
आवारा जिंदगी ।।
बिखरे-बिखरे लोग
बिखरी-बिखरी यादें
बिखरे-बिखरे हम
बिखरे-बिखरे वादे
बिखरा जीवन, बिखरा अर्पण
बिखरी बंदगी ।।
आवारा जिंदगी
आवारा जिंदगी ।।
पल दो पल की धूप
पल दो पल की छांव
पल दो पल है शहर कहीं
पल दो पल है गांव
पल दो पल की राहें
पल दो पल की मंजिल
पल दो पल का खोना
पल दो पल का हासिल
पल दो पल का बंधन
पल दो पल आजादी ।।

आवारा जिंदगी
आवारा जिंदगी ।।
कभी आंचल में आंसू
कभी होठों पर मुस्कान
कभी दो पल का महबूब
जिसपे दिल कुर्बान
कभी दुनिया लगे सुहानी
कभी खुद पर हो अभिमान ।।
कभी भटकी लगे
सोच की कश्ती
कभी उठे तूफान
कभी लगे दुनिया यह अपनी
कभी लगे अंजान ।।
आवारा जिंदगी
आवारा जिंदगी ।।

हवा आज कुछ ऐसी चली

हवा आज कुछ ऐसी चली
चिंताओं की आग जली ।।
घर में बैठे बूढ़े बापू
घर में बैठी माई के
जलते तन्हाई वाले पल में
हाहाकार जलने वाले
तन्हा पैदा होने वाले
अरमानों की लाश बिछी ।।
हवा आज कुछ ऐसी चली ।।
जीवन का दर्शन
सपनों में सिमटा,
हाथों में अब भी है
तवा और चिमटा
बूढ़े मन की दुश्चिंता में
आज हथेली फिर से जली ।।
हवा आज कुछ ऐसी चली ।।
बूढ़े बापू भी तन्हा
बूढी माई भी तन्हा
रिश्ते सारे हुए पहेली
जलते मन के राख तले
उड़ी याद की होली ।।
हवा आज कुछ ऐसी चली ।।

निष्ठुर नितान्त अकेले में
माई के आंखों के आंसू
बूढ़ी फटफटिया पर बापू के
जीवन की सारी कथा लिखी
गांठ गांठ में दर्द उठे
फिर भी फटफटिया है चालू
कुछ और कथानक
ढोने वाली ।।
हवा आज कुछ ऐसी चली ।।
जी लेंगे, जीने ही आए हैं
माई और अकेले बापू
तन्हाई ही साथ रहेगी
अंतिम सपने तो राही
अभी शेष है तृष्णा
और शेष है पारी
अभी जंग लड़ना है बाकी
बेशक तरकश है खाली ।।
हवा आज कुछ ऐसी चली ।।

ठिठुरा हुआ कंकाल

वह देखो, ठिठुरा हुआ
कंकाल बैठा है वहां ।।
दुश्चिंता से पीड़ित
रोटी के लिए तड़पता
ऊंच नीच की खाई में
आशा लिए लुढ़कता
जातिवादी सर्द हवाएं
धर्म की उत्तप्त आग
सर्द से जमता हुआ
आग से पिघला हुआ
अभिमान बैठा है वहां ।।
वह देखो, ठिठुरा हुआ
कंकाल बैठा है वहां ।।
उष्ण लहू के बहते शोणित
बह-बह कर सागर
बनते शोणित
शोणित को पीता
और प्यास बुझाता
जीवन से लड़ता
और लहू बहाता
मृत्यु से डरता,

मर्मांध बैठा है वहां ।।
वह देखो, ठिठुरा हुआ
कंकाल बैठा है वहां ।।
कुछ चर्मावरण को लिए हुए
पीली आंखों में पले हुए
आत्मदाह के अंगारे
छाती में आए तूफानों को
विक्षिप्त हँसी में ढाले
बलिदान बैठा है वहां ।।
वह देखो,ठिठुरा हुआ
कंकाल बैठा है वहां ।।
देखता आलीशां उपत्यकाएं
मद्य में डूबे हुए नर
और यौवन तारिकाएं
स्वयं में मदमस्त
क्रूरता का कटाक्षेप
और सत्य का नत
देखता बिलखता
वर्तमान बैठा है वहां ।।
वह देखो,ठिठुरा हुआ
कंकाल बैठा है वहां ।।
ढूंढता कोई मध्यबिंदु
आशा जीवन का लिए सिंधु
पाता जीवन गूढ़ किन्तु
जीवन से त्रस्त, बिलखता,

समाजवाद की नींव ढूंढता
इंसान बैठा है वहां ।।
वह देखो,ठिठुरा हुआ
कंकाल बैठा है वहां ।।

सोचता हूं गर कहीं मैं

सोचता हूं गर कहीं मैं
बेआबरू हो जोऊं
तो क्या होगा ?
मेरे सालों से पलते जख्म
जहां के रूबरू हो जाये
तो क्या होगा ?
मेरी आवारगी के ज़िक्र में
तू शहंशाह है
मेरे आवारगी की वजह
गर सब खुल जाएं
तो क्या होगा ?
मैं जानता हूं
तेरे पैरों तले रूकती नहीं जमीं
मैं सोचता हूं
तेरे सर से ये आसमां हट जाए
तो क्या होगा ?
ये सच है कि तू सरमाया है
मेरी रूह का
गर ये दौलत
बिखर जाए तो क्या होगा ?
अभी तक तू नूर है
मेरी नजरों में
तू गर निगाह से गिर जाए
तो क्या होगा ?
सोचता हूं गर कहीं मैं

बेआबरू हो जाऊँ
तो क्या होगा ?

हे गीत मेरे तुम मत रुठो

हे गीत मेरे तुम मत रुठो
मेरे जीवन के सारांश तुम्हीं हो
मेरे तप के लाभांश तुम्हीं हो
इस जगती में नहीं बचा कुछ
मन गह्वर के प्रांत तुम्हीं हो ।।
हे गीत मेरे तुम मत रुठो ।।
माना विचलित होकर मैंने
कुछ उच्छृंखल लिख डाला
माना मन की
विकृत संस्कृति में
सार रुप में विकृत हूं
माना भावुकता को
छोड़ कहीं मैं
कुछ नृशंस सा गढ़ डाला,
तुम मेरे अंतर्मन के
तम से परिचित साथी हो ।।
हे गीत मेरे तुम मत रुठो ।।
अभी अभी तो शंखनाद से
रणभेरी तक पथिक रहे हम
अभी अभी तो
प्रलय - सृजन के
चर्चाओं से व्यथित रहे हम

अभी अभी तो
सहज भाव से
शब्दों से साक्षात्कार हुआ
अभी अभी तो
जीवन पथ पर
पथ-पथिक का प्यार हुआ ।।
हे गीत मेरे तुम मत रुठो ।।
तुम ही तो प्राप्य मेरे हो
तुम ही तो वाक्य मेरे हो
तुम ही मेरे प्रणय श्रोत हो
तुम ही मेरे जाति गोत्र हो ।।
हे गीत मेरे तुम मत रुठो ।।

पगली

विश्वविद्यालय की सड़क पर
देखा मैंने एक पगली,
काले फटे चिथड़ों में लिपटी
अर्धनग्न फिर भी सिमटी
बीनती लकड़ियों
और उपालों को
देखा मैंने एक पगली ।।
गगन चुम्बी पेड़ों के नीचे
अपने चिथड़ों को खींचे
नंगे वक्षों को ढकती
कुछ विस्मय विभोर हो सोचती
और गालियां बकती
देखा मैंने एक पगली ।।
यद्यपि उम्र नहीं अधिक थी
फिर भी बूढी लगती
अपने हृदयंगम घावों को
रो-रो हँस-हँस कर सिलती
चलती, फिरती, रूकती,
देखा मैंने एक पगली ।।
ठंडक के ठिठुरन भरे दिनों में
जठराग्नि में जलती
अपना अस्तित्व बचाने को

निर्जीव दीवारों से लड़ती
खंडित मर्यादा के
टुकड़े खा कर
खुद को जिंदा रखती
कुछ खामोशी से सुनती
देखा मैंने एक पगली ।।

कुम्भ

जीवन की जड़ता
मोहक विकृत संस्कृति की
भयानक रक्त वृष्टि
मानव के मशीनीकरण का
मानवीय संवेदना के दमन का
कुम्भ तोड़ डालो ।।
खोल आंखें
है चारो तरफ भयानक आग
जल रहा जिसमें
हमारे पूर्वजों का त्याग ।।
यह जो लपटे हैं
धू धू कर लपेटे
तेरी ही धरोहर की राख
ये मिटा देंगी
तेरी सभ्यता की साख ।।
तुम भरतवंशी
तुम सभ्यता के हो रथी
तुम देखते हो फाड़ आंखें
सभ्यता की घोर अवनति ।।
तुम सुदर्शन की
छत्र छाया में पले
तुम गांडीव की

हुंकार के हो साक्षी
तुम तांडव की
अकाट्य ऊर्जा से पोषित
तुम भीष्म की प्रतिज्ञा हो
पुनर्घोषित ।।
तुम राम हो तुम श्याम हो
तुम धनुर्धर पार्थ
तुम धर्म हो तुम अर्थ हो
तुम परम परमार्थ
तुम ही तप हो तुम ही यज्ञ
तुम ही भिज्ञ और तुम ही प्रज्ञ ।।
फिर क्यों अचेतन का
छद्म ओढ़े सो रहे हो
भूल कर निज प्रलय शक्ति
तुम रो रहे हो ।।
तोड़ दो यह कुम्भ जड़ता का
लो उठा वह शस्त्र सारे
जो लड़ाई लड़ सकें
लो पहन वह कवच कुंडल
जो न छीने इंद्र छल से ।।
उठो अब वक्त है कि
युद्ध की हो घोषणा
कर विजय फिर हो सके
सभ्यता जो कि
हमारी है पुरातन
के पुनर्स्थापना की उद्घोषणा ।।

शिकार हो गए

मैं, तुम, हम सभी
शिकार हो गए
सत्ता के, भर्ता के ॥
बाजार गया था
क्रेता बन कर
लौट आया
दाल रोटी सब्जी की
कीमत सुन कर ॥
ऐसा नहीं कि खरीदने की
इच्छा नहीं थी
ऐसा भी नहीं कि पैसा नहीं था
बस एक सवाल था
क्यों खरीदूं ?
मंदी के नाटक पर
राजनीति के फाटक पर
जमाखोरी की आदत पर
प्रशासन की लूट पर
अपनों की भूख पर
बाजी लगी है ॥
मैं, तुम, हम सभी
शिकार हो गए
सत्ता के, भर्ता के ॥

बाजार मे कहीं और देखा
बैठा है इंसान
अपने ही लहू मांस का
विक्रेता बन कर ।।
एक से पूछा
खून क्यों बेचते हो
बोला भूख लगी है
मुझे भी और मेरे बच्चे को भी,
एक से पूछा
मांस क्यों बेचते हो
बोला
भूख लगी है
मुझे भी और मेरे बच्चे को भी,
मैंने पूछा क्या क्या बेचा
बोला,
एक किडनी, एक आंख
और आधा लहू तो
बेच चुके हैं
मैं, मेरी बीवी और
मेरे बच्चे
बहू जवान है
खुद को बेचने गई है
वहां जहां उसके खरीदार हैं
कुछ नेता, कुछ सिपाही,

कुछ सच्चे और कुछ झूठे ।।
कुछ अंदर टूट सा गया
सत्ता के नाम पर,
बेवक्त चुनावी रैली के नाम पर
सम्भ्रांत जीवन शैली के नाम पर
अरबों खरबों की लागत से
बने बाजार में
बिकते इंसानी लहू
मांस और मर्यादा
पर अवाक हूं ।।
मैं, तुम, हम सभी
शिकार हो गए
सत्ता के, भर्ता के ।।

मसला

मसला बड़ा गजब हुआ
नेतवा अब फिर सजग हुआ ।।
खाकी कुर्ता नहीं चलेगा
सिलवाय काउस सूट
अब खड़ांऊ नहीं चलेगी
मंगवाया रसियन बूट
छोड़ के गमछा, टाई पहना
धंधा है सब झूठ ।।
मसला बड़ा गजब हुआ
नेतवा अब फिर सजग हुआ ।।
अबकी चुनावी टक्कर में
भगवा भी है खड़ा हुआ
और चांद की हरियाली ले
मुल्ला भी है जगा हुआ
पंडित, ठाकुर और हरिजन सब
हैं अब तैयारी में,
जनता भी है खोसे फांड़
खड़ी हुई क्यारी में ।।
डीएम के माथे पर
टपक रहा पसीना
उसका जिला सेन्सेटिव है
नक्सलियों की बारी है ।।

मसला बड़ा गजब हुआ
नेतवा अब फिर सजग हुआ ।।
देखो-देखो बड़ा तमाशा
लोकतंत्र का बाजे ताशा
बजे नगाड़ा युवराजों का
भारी बोझ है ताजों का
बड़ी लड़ाई ठनी हुई
कुतिया बघिनी बनी हुई
शोर शराबे चारों ओर
देखो आए आदमखोर ।।
बन दुर्योधन गदा भांजता
बाहुबली का औलाद खड़ा
और भीम है गिरा पड़ा ।।
पब्लिक के मन का ताला
क्या मजाल कोई खोले साला
है असमंजस और बेचैनी
नेताओं की बस एक निशानी
आदमखोर आदमखोर ।।
मसला बड़ा गजब हुआ
नेतवा फिर अब सजग हुआ ।।

दरख्त दरक गए तो क्या

दरख्त दरक गए तो क्या
हौसले बुलंद हैं
जंग जारी है मगर
तरकश में तीर चंद हैं ।।
कारवां भटक गया
रात काली हो चली
वक्त के हर ताख पर
बैठे हुए भुजंग हैं,
दरख्त दरक गए तो क्या
हौसले बुलंद हैं ।।
मंजिलों की तलाश में
दौड़ कितनी जोर की
सर्द आलम में
मकतल में मचे शोर सी
हौसलों का पस्त होना
एक भयावह भोर सी,
दरख्त दरक गए तो क्या
हौसले बुलंद हैं ।।
कारवां भटका तो
क्यों अंधेरी रात आई
जो भोर होने को हुई तो
क्यों घटा घनघोर छाई

वक्त चलने का हुआ तो
रहगुजर को मौत आई
अब अकेले हैं,
दरख्तों का सहारा है
दरख्त हैं मगर,
यह ईमान के पक्के रहे
भटके हुए हर कारवां के
रहनुमा सच्चे रहे
हर भटकते कारवां ने
जो चोट मारी है इन्हें
हर चोट पर दरके मगर
हैं खड़े... कुछ चंद हैं
दरख्त दरक गए तो क्या
हौसले बुलंद हैं ।।

सूखे सागर की रेती से

सूखे सागर की रेती से
नदियों की पहचान
कहां मिलती है ।।
टूटे चूल्हे के पंजर पर
भूख की आग
कहां जलती है ।।
दस्यु हृदय के मानस तल पर
सृजन वेदना कब पलती है ।।
मृगतृष्णा के पथरीले पथ पर
नव चेतना कब चलती है ।।
सूखे सागर की रेती से
नदियों की पहचान
कहां मिलती है ।।
भंग तपस्या के नितकर्म
भंग मनुष्यता के निजधर्म
भंग अनुष्ठानों के प्रतिफल
भंग भुजाओं के क्लांत बल
चिर निद्रा की चिर शिथिलता
क्रांति अनल में
सब जलती है ।।
सूखे सागर की रेती से
नदियों की पहचान
कहां मिलती है ।।

मैं कौन हूं

मैं कौन हूं ?
कंकरीट के जंगल में खड़ा
एक बबूल का पेड़
या मेले के दंगल का
एक भगोड़ा भेड़ ।।
मैं कौन हूं ?
तंग गलियों में घुसा
ले पापों का बोझ
या निराशा में डूबी
एक विनाशक सोच ।।
मैं कौन हूं ?
बर्फीली आंधी में जमता
काले पत्थर का पहाड़
या सूखे सोते की रेती पर
उगी विषैली झाड़ ।।
मैं कौन हूं ?
अभिसक्त मानव
अपंग दानव
मुरदाई तलवार
या खाली गया वार
मैं कौन हूं ?
एक समाज

डूबी आवाज
या न्यायालय की सीढ़ी पर
बिलख रही फरियाद ॥

गर्दिश गुजर जाएगी

ये जो सिलसिला
चल पड़ा है
दौर-ए-गर्दिश का
कितना चलेगा ।।
तू परेशां मत हो हमराही
हम चलते रहेंगे
और ये कभी तो थकेगा ।।
ये जो जिंदगी है न दोस्त
बड़ी संगदिल होती है,
मगर जो वक्त होता है
वो मरहम पास रखता है ।।
बस तू इतना यकीं रख
मेरे साथी
वक्त आएगा,
गर्दिश गुजर जाएगी ।।
ये सारे घाव जो टीसते हैं
गुलाबी शाम की शबनम से
ओत-प्रोत होकर
सब भर जाएंगे ।।

यह मौसमी फरेब

यह मौसमी फरेब है
कब तक चलेगा ।।
गांव का सबसे गरीब घुरहू
शहर का सबसे गरीब सिधहू
जंगल के जानवर और
शहर के भेड़िए
नोंचते हैं खाल इनकी
फेंकते हैं जाल इन पर
मौसमी शतरंज के मोहरे बना
चलते हैं चाल इन पर ।।
यह मौसमी फरेब है
कब तक चलेगा ।।
वक्त बदला, ताज बदले
सुर बदले और ताल बदले
पूंजीवाद की धुन पकड़े
नेताओं के चाल बदले
अन्ना अन्ना रट डाले
रामदेव के ढाल बदले ।।
बदले राम और अल्ला बदले
बदले पान सुपारी
इस मौसमी फरेब में
बदल गए बुखारी ।।

अगर न बदला तो वह
बदलागढ़ का पीर
बेशक बदली
मेहनतकश की
कीमत और तकदीर ॥
यह मनरेगा मन भावन भी
पाटे लाखों जेब
यह मौसमी फरेब है
कब तक चलेगा ॥
सत्ता में साहेब बदले
गलियों में बदले पाहुन
रंग बदल गया शासन का
गुंडे कूचें आहुंण ॥
बदल गई तस्वीर राज्य की
बदल गई तकदीर
बदल गए हैं शब्द अभी सब
बदल गई तकरीर
मौसम की धुन में सब बदले
दही पड़ी अब खीर ॥
यह बनी नई नजीर भी
मौसमी फरेब है
कब तक चलेगा ॥

नया रिवाज

एक अरसा गुजरा
कोई तहखाने में नहीं आया
तहखाने में सीलन है
जाल के झाड़ हैं
मकड़ियों की सूखी खाल हैं
अंधेरा है और काई है
यह आज के नवाबों का
नाजायज हरम है
इस हरम में
मातम सी छाई है ।।
एक अरसा गुजरा
कोई तहखाने में नहीं आया ।।
एक बिंदिया बंगाल से आई
दूसरी काजल पंजाल से आई
एक मजबूरी में आई है
तो दूसरी ठगी से आई है
एक को बेच दिया भाई ने
दूसरी लगी हाथ कसाई के ।।
तहखाने में बड़ी गंध है
धंधा आज कल मंद है
यह नाजायज सम्बंध है ।।
सरकार जागी है

तहखाने की सफाई होगी
अब यहां बिंदिया
और काजल नहीं रहेंगी
यहां मर्द से मर्द की
सगाई होगी ।।
सरकार जागी है
हजारों लाखों
बिंदिया को उजाड़ेगी
हजारों लाखों
काजल को मिटाएगी
यहां नया रिवाज होगा
अब तो
समलैंगिकों का राज होगा
किसके सिर अब ताज होगा ।।
एक अरसा गुजरा
कोई तहखाने में नहीं आया ।।

एक युद्ध छिड़ा है भारत में

एक युद्ध छिड़ा है भारत में
भारत के भारत होने का।
सदियों से मिटी हुई गरिमा को
मूल रूप में पाने का॥
भारत खंडे जंबू द्वीपे
आर्यावर्ते की पहचान
खो गई उत्पातों में
खो गए वेद खो गए उपनिषद
मध्य काल कलि कालों में॥
जिसने पूरी दुनिया को
सिखलाई भाषा और ज्ञान
जिसके डमरू से निकला
भाषा का माहेश्वर सूत्र
जिसके चक्र सुदर्शन से
पृथ्वी को है मिला सूर्य॥
जिस सैंधव ने दुनिया को
दिया वास्तु का महाज्ञान
जिन आर्यों ने दिये नीति के
चारों वेद और पुराण॥
बैठ अरण्यों में ऋषियों ने
खोजा शून्य और परमाणु
जहां धर्म के लिए कृष्ण ने

गीता का सर्वोत्तम ज्ञान दिया
जहां कर्ण ने छली इंद्र को
कवच और कुंडल दान किया
जहां अगस्त्य ने खारे समुद्र का
सारा पानी पी डाला
और कपिल ने सांख्य रचा ।।
जहां पतंजलि और कणाद ने
योग और वैशेषिक दी
जहां वेदांत, न्याय
और मीमांसा से
है सनातन रचा बसा ।।
जहां दादू, कबीर और नानक ने
निर्गुण का गुणगान किया
सूर कबीर और तुलसी ने
सगुण गुण का रसपान किया ।।
जहां चरक ने करी चिकित्सा
और धन्वंतरि ने
आयुर्वेद का ज्ञान दिया
बौधायन ने गणित दिया
और कणाद ने परमाणु दिया
सुश्रुत ने दिया शल्य और
नागार्जुन ने दिया रसायन ।।
जहां गर्ग मुनि ने
नक्षत्रों की गणना की
जहां मौर्य वंश के राजाओं ने

राजनीति की नींव धरी
और गुप्त वंश के वीरों ने
स्वर्णिम युग की कथा गढ़ी ।।
जहां जैन के महावीर
और बौद्ध के बुद्ध हुए
आज वही भारत फिर से
नव युग के निर्माताओं से
कर रहा युद्ध की मांग अभी
उठ रही आर्य जन के मन में
एक पुरातन आग अभी ।।
एक युद्ध छिड़ा है भारत में
भारत के भारत होने का ।।

लोकशाही

काजल की कोठरी में
कैद हो रही लोकशाही
अब बू सी आने लगी है
बदन सड़ने लगा है
ओस पड़ने लगी है
नमी है ,
इस लोकशाही में
सड़न है, जलन है, अंधेरा है
मनुष्यता के वेश में
नरदानवों ने घेरा है ।।
काजल की कोठरी में
कैद हो रही लोकशाही ।।
नंगे बदन का अंतर
एक प्राच्य और एक तदन्तर
बेहतर था वह ही नंगापन
निर्मल था, निश्छल था
आज सफेदी का कालापन
काले मन का चोर सिपाही ।।
काजल की कोठरी में
कैद हो रही लोकशाही ।।
उफ्फ
यह सड़न की दुर्गंध

लोकशाही चेतना की
मृत्युपर्यंत रहेगी
लाश के जलने का भूरा धुंआ
लोकशाही ऐसे जलेगी ।।
इस लाक्षागृह के
काजल की कोठरी में
कैद हो रही लोकशाही ।।
हम जिन्हें चुनते रहे
चुनते रहेंगे
वो मानव नहीं,
मृग मारीचिका के छद्म ओढ़े
भयानक चेहरे
खंजर जैसे दांतो वाले
बड़े नुकीले
खून से सने पंजो वाले,
जैसा हम
दादी की कहानियों में
सुना करते थे
वही राक्षस हैं ।।
हमने चुना है तो
काजल की कोठरी में
कैद हो रही लोकशाही ।।

रेत सी

जिंदगी, वक्त, सोच
इनके दरमियान खड़े लोग
रिश्ते, नाते और सब कुछ
सब रेत सी ॥
ख्वाहिशें, ख्वाब,
खुदी और खुदाई
मिलना-जुलना,
टूटना और बिखरना,
काबिल गाफिल
मंजिल महफिल,
जीता दिल या हारा दिल
सब रेत सी ॥
सुनहरी सुबह,
सुरमई शाम
मोहब्बत का जज़्बा
या नफरत का जाम
बेबस की मर्जी
या रियासती तामझाम
सब रेत सी ॥
खुशियां, ग़म, हँसना रोना
आस्तीन का चमकना
या मैला होना

फ़लक पर चांद का होना
या सियाह रात,
तूफान का उठना
या बिजलियों की बरसात
सब रेत सी ।।
ये दरिया, ये समंदर, ये जंगल
ये पहाड़ों की लड़ियां,
ये समतल ये मरुस्थल
सब रेत सी ।।
मुट्ठी भर रेत है ये दुनिया,
फिसल जाएगी
रेत सी ।।

जब से तू आई है

जब से तू आई है
मैं झूमता हूं, गुनगुनाता हूं ।।
इन फिज़ाओं में
इन हवाओं में
इस जमीं पर और चांद तारों में
अपनी हर सांस और अक्स में
तुझे महसूस करता हूं
तुझे मैं सोचता हूं
और पाता हूं ।।
मैं आंखे बंद करता हूं
तेरी तस्वीर बनती है
उन्हीं तस्वीरों में
मेरे सपनों की
दुनिया भी पनपती है
तेरा जो दिल धड़कता है
तो मेरी सांस चलती
तेरी किलकारियां
मेरी खुशी का राज बनती हैं ।।
तेरी पायल की छमछम से
मधुर संगीत बजती है
कभी तू कान्हा दिखती है
कभी तू राधा दिखती है ।।
मेरी बच्ची तू खुश रहे हरदम
मेरी सच्चाई बस ये कि
मेरी दुनिया
तेरे नाजों पे पलती है ।।

वह जिंदा है

एक परिंदा है,
वह जिंदा है ॥
उसके पर हैं
वह उड़ता है
दूर आसमां को चीर कर
तूफानों से टकराता है
सूरज से आंख मिलाता है
एक परिंदा है
वह जिन्दा है ॥
वो परिंदे हैं,
शायद जिंदा हैं ॥
उनके भी पर हैं
लेकिन वो बस फड़फड़ाते हैं
जमीं पर हैं,
और अपनी नस्ल
विकसित कर रहे हैं
वो कुछ तो कर रहे हैं
हाँ शायद जिंदा हैं ॥

रक्तिम क्षितिज

आज शाम
दिल्ली के उत्तुंग इमारत की
छत पर खड़ा हो
मैंने क्षितिज को निहारा ।।
ये स्वाभाविक नहीं था
ये प्रकृति के अनुशासन से
शासित नहीं था
ये विकट था
ये प्रलय के बोध के
निकट था ।।
आज शाम
दिल्ली के उत्तुंग इमारत की
छत पर खड़ा हो
मैंने क्षितिज को निहारा ।।
मन में एक आशंका सी उठी
नीचे खेलते बच्चों की किलकारियां
एक विद्रूप चीख सी लगीं
मैंने आसमान से पूछा,
यह क्या है ?
जबाव मिला
रक्तिम क्रांति के समय का
पूर्वाभास ।।

कंकरीट के शहर में

कंकरीट के शहर में
सहर का ठिकाना नहीं ।।
उत्तुंग इमारतों की तरह
इंसान भी
ऊंचाइयों की ओर बढ़ चला
जैसे भी हुआ
हासिल किया और बढ़ चला
संवेदना, अवहेलना की राह पर
बिछड़ी पड़ी
सोच के परे
सोच की जुड़ती कड़ी ।।
कंकरीट के शहर में
सहर का ठिकाना नहीं ।।
इंसान भी अब
कंक्रीट की भाषा बोलता है
निरंतर घर्षण कर
स्वयं को ही तोड़ता है
एक होड़ है
सबसे ऊंचा होने का
हासिल की दौड़ में
गम नहीं है खोने का ।।
कंकरीट के शहर में

सहर का ठिकाना नहीं ।।
मशीनों की भांति
चलता इंसान भी मशीन है
मशीनों के खटर पटर में
जीवन की
स्वभाविक अभिरूचियां भी
बेमानी सी हैं
नृशंसता, स्वार्थ की परिभाषाएं
अब इंसानी सी हैं ।।
कंकरीट के शहर में
सहर का ठिकाना नहीं ।।

वो पहाड़

समतल के ऊपर
चाँद की सतह तक
अडिग, अचल
जो तन के खड़ा है,
वो पहाड़ ।।
धरती की माला जैसे
आधी धूप और छाया जैसे
देवदार की काया जैसे
जो वन, बन के खड़ा है,
वो पहाड़ ।।
नदियों का उद्गम है जो
कवियों का मंथन है जो
जहां चीड़ के विशाल वृक्ष हैं
जहां तेंदुए और रीक्ष हैं,
वो पहाड़ ।।
बहुरंगी फूलों से सजा हुआ जो
जड़ी बूटियों से भरा हुआ जो
श्वेत बर्फ की चादर ओढ़े
शबनम के अश्व पर
चढ़ा हुआ जो ,
वो पहाड़ ।।
बारहों मास शिशिर का मौसम
शून्य और एकांत जहां पर

झरनों का गीत सुनाता
चिड़ियों की धुन पर गाता,
वो पहाड़ ॥
देवों का जो है निवास
संत जहां करते प्रवास
मुनियों की है तपोभूमि
गंधर्वों की रंगभूमि जो,
वो पहाड़ ॥
मेघों का है निलय जहां
है क्षितिज का विलय जहां
खिलते जहां बुरांस के फूल
जहां महकते ब्रह्म कमल,
वो पहाड़ ॥
अब टूट रहे हैं
अपने स्वभाव से छूट रहे हैं
सड़कों का बिछता जाल
तोड़ रहे एकांत प्रवाह
बिखर रहा है पल पल जो,
वो पहाड़ ॥
तीर्थों के पावन पहाड़ पर
अब सैलानी आते हैं
देवों की इस धर्म भूमि पर
कैसे अपवाद रचाते है
अपने तन मन के खंडन का
दर्द झेलता,
वो पहाड़ ।।

तुम आ जाओ

ए घर बिखरा पड़ा है
बर्तन भांडे कपड़े बस्ते
जूते चप्पल अद्दर चद्दर
अर्दे पर्दे अंदर बाहर सब
बिखरा पड़ा है ॥
ए घर बिखरा पड़ा है
कमरे के कोनों पर
रसोई की दीवारों
और छत दोनों पर
मकड़ी के जाले लगे हैं,
फर्श पर
धूल की चादर बिछी है
बगीचे मे झाड़ उग आए हैं
और पौधे सूखे पड़े हैं
ए घर बिखरा पड़ा है ॥
मेरी कमीज़ पर सिलवटें पड़ी हैं
और गिरेबान का बटन
कहीं टूटा गिरा है,
जो कपड़े धोने के लिए
धोबी ले गया
उसी के यहां पड़े हैं,
नागपंचमी को
जो गोबर के नाग

तूने दिवालो पर चिपकाए थे
वो अभी तक वहीं पर जड़े हैं,
ए घर बिखरा पड़ा है ॥
ए दीवारें उदास हैं
खिड़कियां अब नहीं खुलती
अंदर अब ताज़ी हवा
नही घुलती,
सुबह सूरज की रोशनी भी
अंदर आने से हिचकती है
और चांद ने भी
मुंह मोड़ लिया है,
ए घर बिखरा पड़ा है ॥
मैं सब भूल सा गया हूं,
जगना सोना चलना फिरना
हंसना रोना खाना पीना
मिलना जुलना
घर गृहस्थी सब,
ए घर बिखरा पड़ा है ॥
तुम बिन ए घर सूना सूना
कच्चे मिट्टी के घट सा
खाली खाली,
बिन पानी के बादल जैसा
बिन मां के आंचल जैसा
रंग बिना तस्वीरों जैसा
चुभते विषैले तीरों जैसा
बिन सावन के छीटों जैसा,

ए घर बिखरा पड़ा है ।।
सुनो, तुम आ जाओ,
ए घर बिखरा पड़ा है ।।

मेरा गांव

मेरा गांव,
वहां की सुबह
वहां की शाम
वहां की दोपहर
और छाँव
सब निराले हैं ।।
सूरज की पहली किरण
और गाँव का जगना
धीरे धीरे लोगों का
खेतों की ओर निकलना
बच्चे बूढ़े और जवान सब का
नहर की पुलिया पर मिलना
वहीं पर बातें वहीं पर कसरत
वहीं पर दातुन भी करना
वहीं पर फसलों की चर्चा
वहीं पर अवसर की बातें
वहीं पंचायत के मुद्दे
वहीं पर हंसी और ठिठोली
सब निराले हैं ।।
जून महीने की दोपहरी
गांव के पूरब का बगीचा
बगीचे के वो मीठे आम

शीशम, सागौन
और पाकड़ बरगद
बगीचे में है ठंड और छांव
वहीं जुटा है पूरा गांव ।।
एक सिरे पर
महिलाओं की टोली
एक सिरे पर टिके जवान
एक तरफ हैं सभी बुजुर्ग
और वहीं पर नौनिहाल ।।
कुछ का सोना
कुछ का रोना
कुछ का झगड़ना
और तास खेलना
महिलाओं की कानाफूसी
सब निराले हैं ।।
जब खरीफ का मौसम आए
धरती को सोंधी महकाए
हल मे जुते बैलों की जोड़ी
हलवाहे के गीत सुरीले
ऊपर से बारिश की बूंदे
धान रोपते गांव गढ़ी सब
शाम ढले घुघरी जलपान
सब निराले हैं ।।
सावन मे जब बरसे बादल
रिमझिम रिमझिम चारो ओर

घर की बहुएं कजली गाए
उमड़ घुमड़ कर बादल नाचे
गरज गरज कर शोर मचाए
पिया मिलन को आतुर बहुएं
और मिलन पर शर्मा जाना
सब निराले हैं ।।
देखो शरद की शाम यहां
घर घर जले अलाव यहां
हर अलाव के चारो ओर
बैठे होते आस पड़ोस
उसी अलाव में आलू भूनता
बचपन भी हो रहा गर्म
गांव गढ़ी के चर्चाओं में
काका दादा हैं सभी मग्न,
गर्म रजाई मे जाकर
सपनों मे खो जाना
और भोर हो जाना
सब निराले हैं ।।
ये जो शरद ऋतु आई
रबी फसल की शुरू बुआई
सरसों, मटर, मसूर
और अलसी,
गेहूं ,चना साथ मे राई
इनके रंगों मे रंग जाना
मधुर धूप मे देह सुखाना

महुआ की रोटी,
मक्खन के साथ
बजरे की खीर और दाल भात
सब निराले हैं ।।
गांव के पूरब दो मंदिर हैं,
दोनों दीनो के घर हैं,
सुबह सुबह का मंत्रोच्चार
और शाम आरती का गान
लिए घंट और शंख वहां
आधे गांव का जुट जाना
ढोल मजीरे और झांझ की
धुन पर रामायण का गाना
और भंडारे में खाना
सब निराले हैं ।।
तीस साल हो गए
पगडंडी वह छूट गई,
शहर शहर सब भाग रहे
आधी दोपहर सब जाग रहे
पूरी रात सब त्याग रहे
प्रगति पैमाने नाप रहे,
तन से रोगी मन से हारे
और अकेले सब बेचारे
गांव देखते राह उन्ही की
जो गांवों को त्याग रहे ।।
अब बस सपनो में

गांवों का आना
मन मसोस कर रह जाना
अब न गांव को जा पाना
और बगीचे के उस सुख को
फिर अलाव के भुने भोग को
भोर की ओस में नंगे पांव
खेतों की पगडंडी पर
फाग फगुनहट गा पाना,
पुलिया पर बैठे काका की
रात बहुत याद आना
सब निराले है ॥

हरश्रृंगार

शरद ऋतु आई
खिल उठे हरश्रृंगार पुष्प ।।
शिव की बगिया के गंध धूप
नव कपोल नव चन्द्र फलक से
हो सम्मोहित खिले अनूप
शरद ऋतु आई
खिल उठे हरश्रृंगार पुष्प ।।
दिन भर सूरज का सहता ताप
ढाल रहा खुद का प्रताप
शशि से पाने को प्रेम प्रभास
कर रहा संधि काल की आस।।
जैसे जैसे रवि खो रहा ओज
खुल रहे लजाते कली कपोल
लिए मयंक के रश्मि डोर
झूम रहे वृन्त के झुप्प ।।
शरद ऋतु आई
खिल उठे हरश्रृंगार पुष्प ।।
सांझ ढले कोमल कलियों ने
खोल दिए हैं पंख सभी
लुटा दिए पुष्पवृंतो ने
छुपे हुए सब सुवास वृंद ।।
महक उठी है वायु धरा की

महक उठे हैं राग सुप्त,
शरद ऋतु आई
खिल उठे हरश्रृंगार पुष्प ।।